IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

1857 का संग्राम : एक समग्र विवेचन

Dr. Veena Shivhare

Assistant Professor

Department Of History

एब्सट्रेक्ट :–

1857 का वर्ष भारतीय इतिहास में एक भू चिन्ह (Land Mark) ठहरता है। इसी वर्ष ब्रिटिश राज के विरुद्ध एक ऐसा सशक्त विद्रोह हुआ जिसके कारण समान्यतः पूरे उत्तर भारत में कुछ समय के लिए ब्रिटिश सत्ता नाम की कोई व्यवस्था ही नहीं रही। यहाँ स्वभाविक प्रश्न उठता है कि इतने बड़े विद्रोह के लिए कौन से कारक जिम्मेदार थे? वस्तुतः प्लासी के बाद 100 वर्षों में अंग्रेजों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सैन्य नीतियों ने अधिकतर भारतीय जनता को अपना शत्रु बना लिया था। इन ब्रिटिश नीतियों में सामाजिक असमानता, राजनीतिक और धार्मिक हस्तक्षेप, आर्थिक शोषण जैसी कई गहरी और दीर्घकालिक पीड़ाएं शामिल थी। शोषण अब सहन शक्ति से बाहर हो गया था, एकमात्र रास्ता ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना ही शेष था। 1857 के संग्राम में विद्रोहियों ने ऐसा ही करने का प्रयास किया। इस विद्रोह के लिए उत्तरदायी ब्रिट्रिशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक नीतियों और इसके तात्कालिक कारणों की गहन समीक्षा करके विद्रोह के अल्पकालिक और दीर्घकालिक परिणामों को बताना तथा विद्रोह के स्वरूप के संबंध में विद्वानों द्वारा दिये गये विभिन्न मतों का गहराई से विश्लेषण करना आदि इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है। साथ ही प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उन समस्त तथ्यों का विवेचन करना है; जिनके आधार पर इस युगांतकारी विद्रोह के संदर्भ में समस्त पहलुओं पर संपूर्ण रूप से विचार किया जा सके। इस शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। जहाँ मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों जैसे आधुनिक इतिहास लेखकों की शोध पुस्तिकाओं, पत्रिकाओं, ऐतिहासिक लेखों, आलोचनात्मक विवरणों, शोध पत्रों, इंटरनेट से प्राप्त सामग्री आदि को आधार बनाया गया है। संदर्भ सूची इनसे ही संबंधित है। प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, आलोचनात्मक आदि प्रविधियों का प्रयोग करके शोध पत्र को अधिक प्रमाणिकता देने का प्रयास किया गया है।

की वर्ड्सः– 1857, विद्रोह, औपनिवेशिक, ब्रिटिश, राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, शोषण, असंतोष, अन्याय, नीति,

भूमिका :–

1857 का विद्रोह औपनिवेशिक भारत की एक युगांतकारी घटना मानी जाती है। प्लासी के युद्ध के बाद से ही ईस्ट इंडिया कंपनी विस्तारवादी नीति का अनुपालन कर रही थी। प्रारंभ में यह धीमी गति से चल रही थी परंतु वेलेजली, लॉर्ड हेस्टिंग्स और डलहौजी के काल में इसमें तीव्रता आई। व्यपगत(हड़प) का सिद्धांत एवं कुशासन के आधार पर क्रमशः ' सतारा, जैतपुर, झांसी ' एवं अवध के विलय ने अंग्रेजों की मानसिकता को सतह

पर ला दिया। साथ ही महान मुगल बादशाहों के उत्तराधिकारियों को उनके वंशानुगत महल से स्थानांतरण भी ब्रिटिशों की विस्तारवादी नीति को प्रदर्शित करता है। देशी राज्यों के विलय का सीधा प्रभाव संबंधित राजाओं एवं उनके दरबारियों पर पड़ा जो लोग दरबार एवं दरबारियों की आम जरूरत को पूरा करते थे वे बेरोजगार हो गए। इन राज्यों के सैनिकों को भी अपने रोजगार से हाथ धोना पड़ा। कृषकों पर अत्यधिक लगान, स्वदेशी उद्योगों का विनाश, भारतीय समाजिक और धार्मिक परंपराओं में जबरन हस्तक्षेप आदि ब्रिटिश नीतियों से असंतुष्ट राजा, दरबारी एवं दरबार पर आश्रित लोग, कृषक, अपदस्थ जमींदार, छोटे व्यापारी, महिलायें, आम जन आदि सभी ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बगावत का खुले हृदय से समर्थन किया। यह विद्रोह एक दिन की घटना का परिणाम न होकर लम्बे समय से पनप रहे असंतोष एवं अन्याय का परिणाम था जो मेरठ से सैनिक विद्रोह के रूप में शुरू होकर दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, झांसी, अवध, बिहार आदि लगभग पूरे उत्तर भारत में एक नागरिक विद्रोह के रूप में फैल गया। यह विद्रोह अधिक महत्वपूर्ण इसलिए भी है क्योंकि इसमें पहली बार वर्ग और धर्म की सीमाएं टूटती दिखती है। भले ही यह विद्रोह सैन्य दृष्टि से असफल रहा है लेकिन इसने भारतीय जनमानस के मन में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता जैसी अवधारणाओं को पहली बार जन्म दिया।

कारण:–

ब्रिटिशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक नीतियों ने 1857 के विद्रोह में लोगो के अन्दर पनप रहे असंतोष को बढ़ाने में घी का काम किया। ब्रिटिश **आर्थिक नीति** के चलते भारत की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। लगान व्यवस्था से सरकार–साहूकार–जमींदार की तिकड़ी अस्तित्व में आई जिसने संयुक्त रूप से किसानों का शोषण किया। भारत का व्यापार वाणिज्य नष्ट होने लगा, हथकरघा उद्योग इससे काफी प्रभावित हुआ। जो भारत कल तक कपड़ो का निर्यातक था वह आज आयातक बन गया। बुनकरों की दुर्दशा पर बेंटिंग ने ठीक ही लिखा था "भारत का मैदान सूती कपड़ा बुनकरों के अस्थि पंजरों से भरा पड़ा है"। इस प्रकार ब्रिटिश आर्थिक नीति से किसान, परंपरागत जमींदार, छोटे व्यापारी, शिल्पकार आदि सभी असंतुष्ट हो गए। अतः इन सभी वर्गों ने विद्रोह का समर्थन किया।

अंग्रेजों की **सामाजिक नीति** घोर नस्लवादी पक्ष पर आधारित थी जिसे वो शोषण के एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। वह नस्लीय आधार पर स्वयं को भारतीयों से श्रेष्ठ मानते थे तथा भारतीयों को हीन दृष्टि से देखते थे। वे भारतीयों को अंधविश्वासी, असभ्य, रूढ़िवादी एवं पाखंडी समझते थे। फलतः शासक और शासित के बीच अविश्वास बढ़ा। सतीप्रथा का अंत, विधवा विवाह को मान्यता आदि इस अविश्वास को और अधिक बढ़ाने वाले थे।

ब्रिटिशों की **धार्मिक नीति** ने इस विद्रोह को भड़काने में मुख्य भूमिका निभाई। शुरू से ही ब्रिटिशों की मनसा भारत में ईसाई धर्म के प्रचार प्रसार की रही है। 1813 के चार्टर एक्ट में इसाई धर्म प्रचारकों को भारत में रहने और प्रचार करने की अनुमति मिल गई।1856 में पारित धार्मिक अक्षमता कानून से धर्मांतरित व्यक्ति के नागरिक हितों की रक्षा की गारंटी मिल गई। साथ ही सेना को समुद्र पार भेजने का नियम भी बनाया गया। उपर्युक्त व्यवस्थाओं से भारतीयों को एहसास हुआ कि ब्रिटिश सरकार उनका धर्म नष्ट करके उन्हें ईसाई बनाने पर तुली हुई है।

बंगाल की सेना में ज्यादातर सैनिक अवध के थे। वस्तुतः वे वर्दीधारी किसान ही थे। अंग्रेजों की कृषि संबंधी नीति, अवध के विलय की नीति, दाढ़ी–बाल साफ करने का कानून तथा विदेशों में सेवा करने के सैनिक नियम आदि से सैनिक पहले से ही नाराज थे सैनिकों के उक्त असंतोष में चर्बीयुक्त कारतूस ने चिंगारी का काम किया। कारतूसों में गाय एवं सूअर की चर्बी प्रयुक्त होती थी जो हिंदू एवं मुस्लिम दोनों के लिए धर्म विरुद्ध था। फलस्वरुप विद्रोह भड़क उठा और आज के वायरल ऑडियो/वीडियो की तरह लगभग पूरे उत्तर भारत में फैल गया।

कुल मिलाकर 1857 के विद्रोह के लिए कोई एक कारण जिम्मेदार नहीं था बल्कि ब्रिटिशों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक नीतियों ने कई कारणों के समुच्चय को जन्म दिया जो भारतीयों की सहन सीमा से बाहर हो गया और विद्रोह फूट पड़ा। ठीक ही कहा गया है 'अति सर्वत्र वर्जते'।

विद्रोह की घटनांये :–

10 मई 1857 को मेरठ छावनी से प्रारंभ यह विद्रोह देखते ही देखते उत्तर भारत के कई स्थानों में आग की तरह फैल गया। सैन्य विद्रोह के रूप में प्रारंभ इस आंदोलन ने एक व्यापक जन आंदोलन का रूप ले लिया था। विद्रोह की चिंगारी मेरठ छावनी से शुरू हुई क्योंकि यहाँ गाय और सूअर की चरबीयुक्त कारतूसों का प्रयोग करने से इनकार करने पर सिपाहियों को कारावास की सजा दी गई। अगले ही दिन विद्रोहियों ने जेल तोड़ दिये और दिल्ली की ओर निकल गए। दिल्ली आए इन विद्रोही सिपाहियों ने वृद्ध मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर को स्वतंत्र भारत का सम्राट घोषित कर दिया। क्योंकि यह विद्रोह को वैधता और सांकेतिक नेतृत्व प्रदान करने के लिए आवश्यक था। अब दिल्ली विद्रोह का सबसे बड़ा केंद्र बन गई थी और अंग्रेजों के लिए इसे दोबारा प्राप्त करना सबसे बड़ी चुनौती था। पेंशन बंद होने के विरोध में नाना साहेब और उनके प्रमुख सेनापति तात्या टोपे ने कानपुर में विद्रोह का नेतृत्व किया। नाना साहेब ने स्वयं को पेशवा घोषित कर ब्रिटिश छावनी पर कब्जा कर लिया। लेकिन कुछ समय बाद ही अंग्रेजों ने यहाँ फिर से कब्जा कर लिया। और तात्या टोपे को फाँसी पर चढ़ा दिया। अंग्रेजों की हड़प नीति द्वारा झाँसी को जब्त कर लेने और अपने दत्तक पुत्र के अधिकारों के लिए झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने साहस और युद्धकौशल का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया। हालांकि वे वीरगति को प्राप्त हुईं परन्तु उनका बलिदान अविस्मरणिय है। 1856 में 'कुशासन' के आधार पर अवध को जबरन हड़प लेने के कारण यहाँ असंतोष अपने चरम पर पहुँच गया। लखनऊ में विद्रोह का नेतृत्व बेगम हजरत महल ने किया और अपने बेटे बिरजिस कादिर को शासक घोषित किया। स्वयं को रोहिलखंड का नवाब घोषित करते हुए खान बहादुर खान ने बरेली में विद्रोह का नेतृत्व किया और ब्रिटिशों के विरुद्ध संघर्ष किया। इनका नेतृत्व विशेष रूप से मुस्लिम कृषकों और सिपाहियों को एकत्रित करने में सफल रहा। बिहार में जगदीशपुर (आरा) के 80 वर्ष के बुजुर्ग जमींदार कुँवर सिंह ने विद्रोह में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होनें अपने अद्वितीय साहस और रणनीति से अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया। इसके अलावा बुंदेलखंड के भी अनेक हिस्सों में विद्रोह तीव्र हुआ जिन्हें समाप्त करने के लिए अंग्रेजों को कड़ी मशक्कत करनी पड़ी।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 1857 का विद्रोह केवल कुछ सैन्य छावनियों तक सीमित न होकर एक राष्ट्रीय स्तर का आंदोलन बन गया था जिसमें राजे–महाराजे, सैनिक, अपदस्थ जमींदार, मजबूर किसान, महिलाएँ और आम जनता सभी ने योगदान दिया। भले ही अलग–अलग क्षेत्रों में इसकी अलग–अलग तीव्रता और नेतृत्व था, किन्तु सबका उद्देश्य एक ही था ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फैंकना और स्वतंत्रता प्राप्त करना।

विद्रोह की असफलता के कारण :–

1857 के विद्रोह के संदर्भ में एक प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि आखिर इतना बड़ा विद्रोह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल क्यों हो गया; जबकि भारतीय सैनिकों संख्या में अंग्रेजी सेना कई गुना अधिक थे; अधिकतर लोग भी सैनिकों के साथ थे; असंतुष्ट राजे महाराजे भी इनका समर्थन कर रहे थे और भारतीय शासन के प्रमुख केंद्र भी विद्रोहियों के कब्जे में थे। इस संबंध में प्रारंभ में ब्रिटिश विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यह उन्नत सभ्यता की पतनशील सभ्यता पर विजय थी लेकिन यह मत अंग्रेजो के नस्लवादी दृष्टिकोण को दर्शाता है। अतः इस विफलता के कारण कहीं और ढूंढे जाने चाहिए। वस्तुतः

विद्रोह की असफलता के पीछे अस्पष्ट कार्यक्रम, संगठन एवं नेतृत्व का अभाव, आधुनिक सैन्य तकनीकी की कमी, सामंजस्य का अभाव, तटस्थ और ब्रिटिश समर्थक लोगों की उपस्थिति आदि कई कारक अधिक जिम्मेदार थे।

जहाँ एक तरफ सुनियोजित कार्यक्रम, संगठित सेना और कुशल नेतृत्व के साथ अंग्रेज, विद्रोहियों का दमन कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ कुशल नेतृत्व, स्पष्ट कार्यक्रम एवं मजबूत संगठन के अभाव के साथ विद्रोही अंग्रेजो से संघर्ष कर रहे थे। बहादुर शाह जफर वृद्ध एवं कमजोर थे। झांसी की रानी हो या नाना साहब, कुंवर सिंह हो या खान बहादुर; यद्यपि इनकी वीरता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता किंतु इनमें से किसी ने भी विद्रोह को संगठित करके नेतृत्व करने का प्रयास नहीं किया।

उस समय अंग्रेजों की सैन्य तकनीकी विश्व की श्रेष्ठ तकनीक में से एक थी इसी सैन्य तकनीकी के बल पर विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना की गई थी। साथ ही उन्हें सैन्य संसाधनों की कमी भी नहीं थी। वहीं विद्रोहियों के पास संसाधन एवं तकनीकी दोनों की कमी थी। निम्न कोटि के शस्त्रों से उच्च आधुनिक तकनीकी युक्त अंग्रेजी शस्त्रों का मुकाबला गैर बराबरी का मुकाबला था। स्वाभाविक रूप से विद्रोहियों को असफलता हाथ लगी ।

अंग्रेज सैनिक कमांडरों में बेहतर सामंजस्य था वहीं विद्रोही नेताओं, सैनिकों और नागरिकों में उच्च आदर्श का प्रायः अभाव था अलग–अलग नेताओं के अलग–अलग स्वार्थ थे। इनमें से किसी ने भी उकजुट होकर ब्रिटिशों का सामना करने का प्रयास नहीं किया फलतः उनमें उचित सामंजस्य का अभाव देखने को मिला।

इतिहास गवाह है कि किसी भी विद्रोह या आंदोलन की सफलता या असफलता उसमें जागरुक एवं शिक्षित मध्यम वर्ग की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। जिसे हम अमेरिकी क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति या अन्य आंदोलन में देख सकते हैं। दुर्भाग्य से 1857 के विद्रोह में शिक्षित भारतीय मध्यम वर्ग पूर्णतः पृथक ही रहे। कुछ को छोड़कर अधिकांश भारतीय सरदारों की स्वामी भक्ति अंग्रेजों को प्राप्त थी। ग्वालियर के दिनकर राव, हैदराबाद के सालार जंग, नेपाल के जंग बहादुर जैसे सरदारों और सिखों से अंग्रेजों को अमूल्य सहायता प्राप्त हुई। तत्कालीन गवर्नर जनरल कैनिंग ने यह भी स्वीकार किया था कि यदि सिंधिया भी इस विद्रोह में शामिल हो जाएगा तो वह अगले दिन ही भारत छोड़ देंगे।

कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि यह मुकाबला गैर बराबरी का था; एक तरफ आर्थिक–राजनीतिक दृष्टि से प्रौढ़, सैन्य दृष्टि से सक्षम और आत्मविश्वास से पूर्ण अंग्रेज थे तो वहीं दूसरी तरफ योजना, संगठन, नेतृत्व एवं संसाधन विहीन विद्रोही, जिनकी वीरता एवं ब्रिटिश विद्रोही भावना ही मुख्य हथियार थी। अतः स्वाभाविक रूप से विद्रोही अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहे। यद्यपि संघर्ष में एकीकृत नेतृत्व, संसाधनों की कमी, रणनीतिक विसंगतियों आदि के कारण यह विद्रोह अपने तत्कालीन उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रहा लेकिन इसके दीर्घकालिक प्रभाव अत्यंत गहरे और निर्णायक थे। इसने देश के जन मानस में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की चेतना जागृत की जो 1942 के आंदोलन की आधारशिला बनी। आगे गांधी जी के नेतृत्व में जब इन तमाम समस्याओं से छुटकारा मिला तो अंततः विजय भारतीय जनता को मिली और अंग्रेज 1947 ईस्वी में भारत छोड़ने पर मजबूर हुए।

प्रकृति अथवा स्वरूप :–

1857 के विद्रोह में जहां एक तरफ औपनिवेशिक शासन के विरोध के आरंभिक तरीकों का चरमोत्कर्ष दिखता है तो वहीं दूसरी तरफ राष्ट्रीय चेतना के भ्रूणावस्था में घटित होने वाली घटना भी। स्वाभाविक रूप से इसके स्वरूप को लेकर इतिहासकारों में एकमत नजर नहीं आता है यद्यपि इसके कारण और परिणाम स्पष्ट रूप से नजर आते हैं। इसके स्वरूप के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने कई मत दिए जिनके तटस्थ विश्लेषण करने पर निम्नलिखित प्रश्न उभर कर आते हैं :–

1. क्या यह विद्रोह केवल सैनिक विद्रोह था या इसमें अन्य वर्गों की भागीदारी भी थी ?

2. क्या यह विद्रोह केवल मुसलमानों के प्रयास का परिणाम था या इसमें अन्य धर्म की भागीदारी भी थी ?

3. क्या यह विद्रोह अचानक फूटा था या यह संचित असंतोष का परिणाम था ?

4. क्या यह सभ्य लोगों के खिलाफ बर्बर लोगों का विद्रोह था या औपनिवेशिक शोषको के खिलाफ जन विद्रोह था ?

5. क्या इस विद्रोह में संगठन, योजना, नेतृत्व आदि के तत्व नजर आते हैं या यह एक स्वतः स्फूर्त विद्रोह था ?

6. क्या यह मात्र स्थानीय स्तर और संकीर्ण स्वार्थो तक सीमित ही था या इसमें राष्ट्रीयता के तत्व भी देखे जा सकते हैं ?

उपरोक्त सभी प्रश्नों से टकराते हुए ही हम 1857 के विद्रोह के स्वरूप के संदर्भ में किसी उचित निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। इस विद्रोह के शीघ्र बाद ब्रिटिश विद्वानों ने भारत में ब्रिटिश नीति का औचित्य सिद्ध करने के लिए इसे सैनिक विद्रोह का नाम दिया। परंतु इस मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता। यद्यपि इस विद्रोह की शुरुआत सैनिक वर्ग द्वारा हुई परंतु शीघ्र ही इसमें कई अन्य वर्ग भी शामिल हो गए। रानी लक्ष्मीबाई जैसे राजे महाराजे, कुंवर सिंह जैसे अपदस्थ जमींदार, अवध की कृषक जनता, छोटे व्यापारी आदि भी सैनिकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े थे। यह सही है कि बुद्धिजीवी वर्ग एवं बड़े व्यापारी इससे अलग ही रहे परंतु मात्र दो वर्गों के आधार पर ही इसे एक वर्गीय विद्रोह कहना उचित नहीं हैं। क्योंकि यहां वर्गीय सीमाएं टूटती नजर आ रहीं थी। यद्यपि इस विद्रोह की शुरुआत सैनिक विद्रोह के रूप में भले ही हुई थी परन्तु इसका विकास एक जन विद्रोह के रूप में हुआ अतः यह मात्र सैनिक वर्ग का विद्रोह नहीं था।

विद्रोह के ठीक अगले दिन विद्रोहियों ने बहादुरशाह जफर को सम्राट घोषित कर दिया जिसे ब्रिटिश विद्वानों ने मुगल शासन की पुनः स्थापना से जोड़कर विद्रोह को मुस्लिम षड्यंत्र घोषित कर दिया। इस मत को स्वीकारना भी मुश्किल है क्योंकि इस विद्रोह में अलग–अलग पृष्ठभूमि एवं अलग–अलग धर्म के लोग शामिल थे। जो हिंदू मुस्लिम एकता यहां देखी गई वह आगे आने वाले आंदोलन में शायद ही दिखी हो। बहादुर शाह जफर को इस विद्रोह का पूर्ण ज्ञान नहीं था वे तो मेरठ के विद्रोहियों को दिल्ली में देखकर भौचक्के रह गए। अतः इसे केवल मुसलमानों से जोड़कर नहीं देखा जा सकता था क्योंकि इसमें अन्य धर्मों की भी समान भागीदारी भी थी।

कुछ विद्वान इसे अचानक प्रस्फुटित मानते है जो उचित नहीं लगता। यह विद्रोह अचानक नहीं फूटा था वरन् औपनिवेशिक शोषण की प्रतिक्रिया में कई वर्षो से संचित असंतोष का परिणाम था। इसके पहले के तमाम आदिवासी, कृषक एवं सैन्य विद्रोह इसकी पूर्वपीठिका थे। बेलूर एवं बैरकपुर में सैन्य विद्रोह का प्रयास काफी पहले ही हो चुका था। ब्रिटिश की लगान नीति, डलहौजी का व्यपगत सिद्धांत, वेलेजली की

सहायक संधि, चर्बी वाले कारतूस आदि ने उस विद्रोही प्रक्रिया को तेज कर दिया जो प्लासी से ही चली आ रही थी।

जहां तक सभ्यता एवं बर्बरता के बीच युद्ध का प्रश्न है तो यह पाश्चात्य इतिहासकारों की साम्राज्यवादी व नस्लवादी मानसिकता का परिणाम है। यद्यपि यह सही है कि विद्रोहियों में कुछ तत्व 1757 से पहले की स्थिति में जाना चाहते थे परंतु पीछे लौटने का कारण शोषण से आजादी थी। उन्होंने अत्यंत ही साहस एवं वीरता का परिचय दिया। विद्रोह के दौरान जलसा आदि के गठन के समय हमें प्रगतिशीलता भी नजर आती है। वहीं जो अंग्रेज अपने आप को सभ्य कहते हैं उन्होंने विद्रोह के दमन के दौरान बर्बरता की सभी हदें पार कर दी; उदाहरण के लिए बनारस आदि का कोई भी ऐसा नाला नहीं बचा था जिसमें शव ना बह रहा हो। दीवान बेलूटंपी जैसे मरे हुए विद्रोहियों को फांसी पर लटकाना आदि किसी भी अर्थ में सभ्य लोगों की निशानी नहीं कही जा सकती।

विद्रोह में संगठन, विचारधारा, कार्यक्रम आदि का प्रारंभ से ही अभाव दिखता है। यद्यपि विद्रोहियों ने बहादुर शाह जफर को सम्राट घोषित कर सांकेतिक नेतृत्व प्रदान करने का प्रयास किया साथ ही प्रचार प्रसार के लिए चपाती एवं कमल के फूल का प्रयोग भी संभवतः किया गया। विद्रोह का संचालन भी एक समिति के द्वारा किए जाने का प्रयास किया गया परंतु विद्रोहियों में सामंजस्य की कमी, स्थानीय स्तर का नेतृत्व, लड़ाई जीतने के बाद के कार्यक्रम आदि के बारे में अस्पष्टता तथा सभी विद्रोहियों का अपने–अपने विशेष कारणों से ब्रिटिशों से असंतुष्टता एवं उन कारणों को समाप्त करने हेतु विद्रोह में शामिल होना इसे स्वतः स्फूर्त होने की ओर ही इशारा करता है। परंतु इन्हें समय मिला होता और बुद्धिजीवी वर्ग इसमें शामिल होता तो संभवतः एक निश्चित विचारधारा, संगठन, कार्यक्रम एवं नेतृत्व की कमी पूरी हो जाती।

वी.डी. सावरकर इस विद्रोह को प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा देते हैं, जबकि अधिकतर इतिहासकार इसमें राष्ट्रीयता का तत्व कम ही देखते हैं। वस्तुतः राष्ट्रवाद की आधुनिक कसौटी पर यह विद्रोह राष्ट्रीय नहीं ठहरता क्योंकि विद्रोह में कुछ क्षेत्र एवं वर्गों की अनुपस्थिति, अधिकतर विद्रोहियों का अपने–अपने संकीर्ण हितों से शामिल होना, सीमित प्रभाव क्षेत्र आदि कुछ ऐसे तत्व थे जिसकी वजह से विद्रोह को राष्ट्रवादी चरित्र नहीं प्रदान कर पाता। साथ ही उपनिवेशवाद की समझ, शत्रु की स्पष्ट पहचान, राजनीतिक संगठन, भविष्योन्मुखी राजनीतिक–आर्थिक कार्यक्रम, राष्ट्रीय चेतना एवं स्पष्ट अखिल भारतीय दृष्टिकोण का अभाव जैसे तत्व इस विद्रोह को परवर्ती राष्ट्रीय आंदोलन से भिन्न करते हैं जो इसे राष्ट्रीय दर्जे के हक से दूर करता है।

परंतु तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में उपर्युक्त प्रश्न का आकलन करें तो यह काफी हद तक राष्ट्रीय आंदोलन के समीप ठहरता है जैसे विद्रोह के दौरान तमाम सीमाएं टूट रही थी यथा–

1. इसमें वर्ग की सीमा टूट रही थी, जमींदार, कृषक, सैनिक, छोटे व्यापारी एवं अपदस्थ राजे एक साथ ब्रिटिशों से लड़ रहे थे;

2. धर्म की सीमा टूट रही थी, हिंदू मुस्लिम भाईचारा जो इस आंदोलन में दिखा वह आगे के राष्ट्रीय आंदोलन में कम ही नजर आता है;

3. क्षेत्र की सीमा टूट रही थी, केवल अवध ही नहीं बल्कि इसका भौगोलिक विस्तार लगभग पूरे उत्तर भारत में दिखता है।

वस्तुत राष्ट्रवाद कोई एक घटना नहीं है वरन इसका विकास धीरे–धीरे चलने वाली एक क्रमिक प्रक्रिया के द्वारा होता है। अतः 1857 के विद्रोह को पूर्ण राष्ट्रीय भले ही ना कहा जा सके परंतु इसे आद्य राष्ट्रवादी का दर्जा देने में कोई कठिनाई नहीं होना चाहिए।

निष्कर्ष :–

कुल मिलाकर उपर्युक्त विश्लेषणों के आधार पर यह कहा जा सकता है 1857 का विद्रोह केवल एक प्रयास मात्र नहीं था बल्कि यह गुलामी से मुक्ति के लिए भारत में पहला संगठित कदम था। जहाँ वर्षो से पनप रहे असंतोष के खिलाफ एकजुट होने का साहस दिखता है। भले ही 1857 के विद्रोह के स्वरूप के संबंध में स्पष्टतः कुछ नहीं कहा जा सकता किंतु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह विद्रोह औपनिवेशिक शक्तियों की शोषण एवं दमन परक नीति के विरुद्ध था। साथ ही धर्म, वर्ग, भाषा, क्षेत्र आदि की सीमाएं भी विद्रोह के दौरान टूट रही थी जो इसे राष्ट्रीय विद्रोह की तरफ अग्रसर कर रही थी। यद्यपि इस विद्रोह का तात्कालिक लाभ तो नहीं मिला परंतु दूरगामी प्रभाव में इसने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत की और आगे आने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए प्रेरणा का कार्य किया। इस विद्रोह ने ब्रिटिशों को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक नीतियों में परिवर्तन लाने के लिए बाध्य किया; यद्यपि ये नीतियां प्लासी से चली आ रहीं मूल नीति जो औपनिवेशिक शोषण पर आधारित थी, की परिधि से बाहर कभी नहीं गयी लेकिन औपनिवेशिक हितों की पूर्ति पर आधारित इन्हीं नीतियों ने कालांतर में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के उद्भव में सहायता की जिससे देश को आजादी मिली। बिट्रिशों के लिए ये नीतियां भस्मासुर भी साबित हुई। इस विद्रोह ने आगे आने वाली पीढ़ियों को साहस, स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता के महत्व को समझाया। इसी कारण 1942 के स्वतंत्रता आंदोलन में हमें साहस के साथ राष्ट्रीयता की भावना अपने चरम पर दिखती है जो अंततः देश से विदेशी शक्ति को उखाड़ फैंकती है।

संदर्भ सूची :–

- चंद्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2009
- बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक और उसके बादः आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2009
- चंद्र, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2009
- सरकार, सुमित, आधुनिक भारत (1885–1947), राजकमल पब्लिकेशन, 2019
- सावरकर, वी. डी., द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस 1857, प्रभात प्रकाशन प्रा. लि., 2021
- ग्रोवर, बी. एल., आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन, एस. चन्द पब्लिकेशन, 2020
- मजूमदार, आर. सी., द सिपोय म्यूटिनी एंड द रिवोल्ट आफ 1857, एल.जी. पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2021
- डेलरिम्पल, विलियम, द लास्ट मुगलः द फाल आफ ए डायनेस्टीः दिल्ली 1857, अल्फ्रेड ए. नोफ, 2007